

अध्याय-1

राज्य सभा: विकास, शक्तियां और स्थिति

संविधान सभा को जिन अनेक विषयों पर विचार करना पड़ा उनमें से एक विषय भारतीय संसद् के लिए एक द्वितीय सदन गठित करने के बारे में था। संविधान सभा के सामने विश्व की प्रमुख संसदों के द्वितीय सदनों के नमूने ही नहीं थे बल्कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1919 (भारत शासन अधिनियम, 1919) के अधीन उस समय विद्यमान सेंट्रल लेजिस्लेचर (केन्द्रीय विधान-मंडल) का कार्यकरण भी उसके सामने था। यह विधान-मंडल दो सदनों से मिलकर बनता था अर्थात् काउंसिल ऑफ स्टेट (राज्य परिषद्), जिसमें 60 सदस्य होते थे और लेजिस्लेटिव असेम्बली (विधान सभा) जिसमें 145 सदस्य होते थे। काउंसिल (परिषद्) की अध्यक्षता प्रेज़ीडेंट (अध्यक्ष) द्वारा की जाती थी और वह यदि पहले ही भंग न कर दी गई हो तो पांच वर्ष तक चालू रह सकती थी। जैसाकि इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन (भारतीय कानूनी आयोग) द्वारा कहा गया था:

काउंसिल ऑफ स्टेट के लिए निर्वाचक-मंडल इस तरह से बनाया गया है ताकि उच्च सदन का स्वरूप लेजिस्लेटिव असेम्बली से भिन्न हो और मताधिकार वस्तुतः अत्यंत सीमित हो। संपत्ति की अर्हताएं इतनी ऊंची रखी गई हैं ताकि धनी ज़मींदारों को प्रतिनिधित्व मिले; केन्द्रीय या प्रादेशिक विधान-मंडल में पूर्व अनुभव, किसी नगर परिषद् के सभापीठ में सेवा, किसी विश्वविद्यालय की सीनेट की सदस्यता और सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और अनुभव की ऐसी ही कसौटियां मत देने की अर्हता प्रदान करती हैं। निर्वाचकों को अधिकांशतः सांप्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों में वर्गीकृत कर दिया गया है... महिलाओं को काउंसिल ऑफ स्टेट के चुनावों में मतदान करने या खड़े होने के लिए पेशकश करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि काउंसिल ऑफ स्टेट को ऐसा संकल्प पारित करने की शक्ति है जिससे ये दोनों अवरोध दूर हो सकते हैं। काउंसिल ऑफ स्टेट गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त प्रेज़ीडेंट के अधीन कार्य करती है और यदि पूर्व में भंग न की जाए तो पांच वर्ष तक कार्य करना जारी रखती है।¹

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 (भारत शासन अधिनियम, 1935) में दो सदनों वाले परिसंघीय (फेडरल) विधान-मंडल की परिकल्पना की गई थी। इन दो सदनों का नाम काउंसिल ऑफ स्टेट और हाउस ऑफ असेम्बली (या फेडरल असेम्बली) रखा गया था। काउंसिल ऑफ स्टेट में 260 सदस्य होने थे जिनमें से 156 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के और 104 प्रतिनिधि भारतीय राज्यों के थे। फेडरल असेम्बली की सदस्य-संख्या 375 रखी गई थी जिनमें से 250 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के और 125 प्रतिनिधि भारतीय राज्यों के थे। काउंसिल ऑफ स्टेट को ऐसा स्थायी निकाय होना था जिसे भंग नहीं किया जा सकता था किंतु उसके सदस्यों में से यथासंभव एक-तिहाई सदस्यों को हर तीन साल में निवृत्त होना था। असेम्बली का कार्यकाल पांच वर्ष के लिए था।² किंतु भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन जिस परिसंघीय योजना की परिकल्पना की गई थी वह कभी कार्यान्वित नहीं हुई। इस पर भी दोनों अधिनियमों में जिस योजना या तंत्र की व्यवस्था की गई थी वह नये संविधान के अधीन स्वतंत्र भारत के विधान-मंडल की रूपरेखा तैयार करने के लिए संतोषजनक आधार नहीं बन सकी।³

संविधान सभा द्वारा श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित की गई संघ संविधान समिति ने

21 जुलाई, 1947 को अपना प्रतिवेदन असेम्बली के समक्ष रखा था। इसमें केन्द्र में द्वितीय सदन के बारे में निम्नलिखित प्रस्ताव रखे गए थे:

- (1) दो सदनों के नाम काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल होने चाहिए। इन नामों से उस रीति का पता चलता है जिसके अनुसार प्रत्येक सदन का गठन किया जाएगा; संघ की संसद् का नाम 'नेशनल असेम्बली' रखा जाएगा।
- (2) काउंसिल ऑफ स्टेट्स में 250 सदस्य होने चाहिए।
- (3) इकाइयों का प्रतिनिधित्व पचास लाख की आबादी तक प्रत्येक पूरी दस लाख की आबादी के लिए एक सदस्य और साथ ही प्रत्येक अतिरिक्त बीस लाख की आबादी के लिए एक सदस्य के आधार पर होना चाहिए परंतु एक इकाई के लिए अधिकतम सदस्य-संख्या बीस होनी चाहिए। इस सूत्र की सिफारिश एक उप-समिति द्वारा की गई थी जिसके सदस्य डा० अम्बेडकर, श्री गोपालस्वामी अय्यंगर, श्री के० एम० मुंशी और सरदार के० एम० पणिकर थे।
- (4) ऐसे दस सदस्यों को छोड़कर जो राष्ट्रपति द्वारा विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक निकायों से परामर्श करके नामनिर्देशित किए जाएंगे, प्रतिनिधियों को इकाइयों के विधान-मंडलों के निम्न सदनों द्वारा निर्वाचित किया जाना चाहिए।
- (5) भारत के उपराष्ट्रपति काउंसिल के पदेन सभापति होंगे; यदि कोई सदस्य उपराष्ट्रपति निर्वाचित होगा तो वह अपने स्थान को खाली करेगा।
- (6) सिवाय वहां तक जहां तक धन विधेयकों के संबंध में, दोनों सदनों के पास समान शक्तियां होंगी और गतिरोधों को संयुक्त बैठकों के द्वारा दूर किया जाएगा।
- (7) धन विधेयक हाउस ऑफ द पीपल में आरंभ होंगे और उनके संबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स की शक्ति संशोधन के सुझाव देने तक सीमित होगी जिसे हाउस ऑफ द पीपल स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।
- (8) काउंसिल ऑफ स्टेट्स भंग नहीं होगी। किंतु उसके सदस्यों में से एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएंगे।¹

संविधान सभा ने 28 जुलाई, 1947 को समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा की। चर्चा के दौरान द्वितीय सदन की स्थापना के बारे में भिन्न-भिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए गए। उदाहरण के लिए एक सदस्य की राय थी कि द्वितीय सदन आवश्यक नहीं है।² एक अन्य सदस्य की राय थी कि पिछले अनेक वर्षों का अनुभव यह रहा है कि उच्च सदन प्रगति के रास्ते में रोड़ा बन जाता है और इसलिए संविधान में उसे जारी रखना बुद्धिमत्ता की बात नहीं है।³ दूसरी ओर एक सदस्य का विचार था कि द्वितीय सदन से लाभ ही नहीं होगा बल्कि वह नितांत आवश्यक भी है। उनकी राय थी कि द्वितीय सदन से एक प्रकार का संयम आ सकेगा और पुनर्विचार का अवसर मिल सकेगा और द्वितीय सदन के बिना राज्यों के प्रतिनिधि समुचित भूमिका नहीं निभा पाएंगे।⁴ वाद-विवाद का उत्तर देते हुए श्री गोपालस्वामी अय्यंगर ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

विश्व में जहां कहीं भी किसी महत्व के कोई परिसंघ हैं, प्रायः सर्वत्र द्वितीय सदन की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। आखिरकार हमारे सामने विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या वह कोई उपयोगी कार्य करता है।

हम द्वितीय सदन से अधिकतर यह अपेक्षा करते हैं कि वह संभवतः महत्वपूर्ण विषयों पर मर्यादित ढंग से वाद-विवाद कर सकेगा और ऐसे कानून को जल्दबाजी में बनाने से रोकेगा जो क्षणिक आवेश का परिणाम हो और तब तक उसे रोके रखेगा जब तक आवेश शांत न हो जाए और विधान-मंडल के समक्ष रखे गए विधान पर शांतिपूर्ण ढंग से विचार करना संभव न हो जाए और हम संविधान में सावधानीपूर्वक यह उपबंध करेंगे कि जब भी किन्हीं महत्वपूर्ण विषयों, विशेषतः वित्त संबंधी विषयों पर, हाउस ऑफ द पीपल और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के बीच टकराव होगा तब हाउस ऑफ द पीपल का मत ही सर्वोपरि रहेगा। अतः द्वितीय सदन के विद्यमान रहने से हमारी वास्तविक उपलब्धि यह होगी कि हम उसे एक ऐसे साधन के रूप में इस्तेमाल करेंगे जिससे हम जल्दबाजी की किसी कार्यवाही में विलंब कर सकेंगे और हम संभवतः ऐसे सुलझे हुए लोगों को अवसर दे सकेंगे, जो, हो सकता है कि राजनैतिक घमासान में बहुत अधिक उलझे हुए न हों किन्तु जो ऐसी विद्वता और महत्त्व के साथ वाद-विवाद में भाग लेने के इच्छुक हों, जिसकी सामान्यतः हम हाउस ऑफ द पीपल से अपेक्षा नहीं रखते। इस द्वितीय सदन के बारे में इतना ही प्रस्ताव है। मैं समझता हूँ कि कुल मिलाकर जो विचार रखे गए हैं वे अधिकांशतः ऐसे द्वितीय सदन के पक्ष में हैं और इस बारे में सावधानी बरते जाने के पक्ष में हैं कि वह विधान या प्रशासन के रास्ते में कोई बाधा सिद्ध न हो।⁹

असेम्बली ने कुछ परिवर्तनों के साथ प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया। एक प्रस्तावित परिवर्तन यह था कि “नेशनल असेम्बली” नाम छोड़ दिया जाए क्योंकि यह अनुभव किया गया कि बहुत अधिक नामों को रखना आवश्यक नहीं है।¹⁰ दूसरा प्रस्तावित परिवर्तन श्री गोपालस्वामी अय्यंगर का था जो कुछ लंबे संशोधनों के रूप में था और उसमें यह उपबंध किया गया था कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स की सदस्यता हाउस ऑफ द पीपल की सदस्यता के आधे से अधिक नहीं होनी चाहिए। इनमें से पच्चीस सदस्य 1937 के आयरलैंड के संविधान के अनुसार कार्यशील निर्वाचन-क्षेत्रों या पैनलों द्वारा निर्वाचित होने थे क्योंकि उनके अनुसार विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक निकायों से होने वाले नामनिर्देशन के उस मूल प्रस्ताव का दायरा बहुत संकुचित था जिसकी संघ संविधान समिति द्वारा सिफारिश की गई थी। उनका विचार था कि उन व्यक्तियों को, जो इन निकायों के न हों किन्तु जो राष्ट्रीय कार्य-कलापों के महत्वपूर्ण पहलुओं से जुड़े हुए हों, काउंसिल ऑफ स्टेट्स का सदस्य होना चाहिए। ऐसा होने पर भी (इकाइयों के दृष्टिकोण को संसदीय स्तर पर प्रभावी रूप से व्यक्त करने के साधन के रूप में) काउंसिल ऑफ स्टेट्स का वास्तविक मूल स्वरूप बना रहेगा और उसके सदस्य इकाई के निर्वाचित सदस्यों द्वारा न्यूनाधिक रूप से राज्यक्षेत्रीय आधार पर बहुत भारी संख्या में चुने जाएंगे और किसी विधान-मंडल में दो सदन होने पर उसके निम्न सदन के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जाएंगे। तथापि, संघ संविधान समिति को इन मामलों पर आगे विचार करने का प्राधिकार दिया गया और यह निदेश दिया गया कि वह असेम्बली के अध्यक्ष के समक्ष अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे।¹⁰ तदनुसार समिति ने इन व्यौरों पर पुनर्विचार किया। यद्यपि समिति इकाइयों के प्रतिनिधित्व संबंधी अपने मूल जनसंख्या सूत्र पर दृढ़ रही तथापि, उसने अन्य बातों के साथ एक इकाई के लिए बीस की बजाय, जिसकी मूलतः सिफारिश की गई थी, पच्चीस की अधिकतम सीमा निश्चित की।

तदनुसार संविधान के पहले प्रारूप (अक्टूबर, 1947) में एक काउंसिल ऑफ स्टेट्स का उपबंध किया गया जिसकी सदस्य-संख्या हाउस ऑफ द पीपल की सदस्य-संख्या के आधे से अधिक नहीं थी। पच्चीस सदस्य ऐसे पांच कार्यशील पैनलों से चुने जाने थे जिन्हें पहले आम चुनाव से पूर्व और उसके बाद प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन के पहले तैयार किया जाना था। इन पैनलों में उन व्यक्तियों के नाम रखे जाने थे जिनके पास निम्नलिखित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव था: (क) राष्ट्रभाषा और संस्कृति,

साहित्य, कला, शिक्षा और ऐसे व्यावसायिक हित जिनकी परिभाषा परिसंघीय संसद् के अधिनियम के द्वारा की जा सकती हो; (ख) कृषि और तत्संबंधी हित; (ग) श्रम; (घ) उद्योग और वाणिज्य जिनमें बैंकिंग, वित्त, लेखाशास्त्र, इंजीनियरी और वास्तुकला शामिल होगी और (ङ) लोक प्रशासन और सामाजिक सेवाएं। संविधान के प्रारूप की चौथी अनुसूची में पैनल तैयार करने के लिए विस्तृत उपबंध किए गए थे। इन पैनलों से काउंसिल ऑफ स्टेट्स के लिए वास्तविक निर्वाचन हाउस ऑफ द पीपल के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाना था। काउंसिल के शेष सदस्य इकाइयों के निम्न सदन के सदस्यों द्वारा चुने जाने थे। चौथी अनुसूची में विभिन्न प्रदेशों के लिए सीटों के आवंटन के बारे में उपबंध किया गया था।

संविधान के प्रारूप में काउंसिल ऑफ स्टेट्स से संबंधित अन्य उपबंध इस प्रकार थे: काउंसिल ऑफ स्टेट्स एक स्थायी निकाय होगी जिसे भंग नहीं किया जा सकेगा और उसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएंगे; राष्ट्रपति को प्रत्येक वर्ष में कम से कम एक बार प्रत्येक सदन को आहूत करने की शक्ति होगी; भारत का उपराष्ट्रपति काउंसिल ऑफ स्टेट्स का सभापति होगा; सभापति के अनुपस्थित होने पर या उसके द्वारा राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन किए जाने पर सभापति के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए उपसभापति का निर्वाचन किया जाएगा, दोनों सदनों की समसामयिक सदस्यता का निषेध होगा; इसके साथ ही सदस्यता संबंधी निरर्हताओं, सदस्यों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों और वेतन तथा भत्तों के बारे में उपबंध किए गए थे। विधायी और वित्तीय प्रक्रिया आदि के बारे में प्रारूप में अन्य बातों के साथ यह उपबंध किया गया था कि जब तक किसी विधेयक को दोनों सदनों द्वारा समान रूप में नहीं पारित किया जाएगा तब तक उसे राष्ट्रपति की अनुमति के लिए नहीं प्रस्तुत किया जाएगा और धन विधेयकों के मामले के सिवाय दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त होंगे और उनके बीच मतभेद होने पर उनका निपटारा दोनों सदनों की उस संयुक्त बैठक में बहुमत से होगा जिसे राष्ट्रपति द्वारा बुलाया जाएगा। प्रारूप में धन विधेयकों की परिभाषा दी गई थी और वे हाउस ऑफ द पीपल में ही आरंभ हो सकते थे। धन विधेयकों के संबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स की शक्तियां संशोधन के लिए सुझाव देने तक सीमित की गई थीं। यह भी उपबंध किया गया था कि यदि इन सुझावों को हाउस ऑफ द पीपल द्वारा स्वीकार न किया जाए और यदि काउंसिल ऑफ स्टेट्स तीस दिन के भीतर अपने संशोधन संबंधी सुझावों के साथ विधेयक को न लौटाए तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पारित किया गया समझा जाएगा जिस रूप में वह हाउस ऑफ द पीपल द्वारा पारित किया गया था और उसे अनुमति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। काउंसिल ऑफ स्टेट्स को पूर्तियों पर मतदान करने या परिसंघीय राजस्व से किए गए व्यय पर नियंत्रण करने की कोई शक्ति नहीं दी गई थी।¹¹

प्रारूपण समिति ने संविधान के प्रारूप में इन उपबंधों पर विस्तारपूर्वक विचार किया और उसमें कुछ परिवर्तन किए। उसने निर्णय लिया कि भारत को राज्यों का संघ (परिसंघ नहीं) कहा जाएगा और इस निर्णय के फलस्वरूप संघ के विधान-मंडल का नाम "परिसंघ की संसद्" के स्थान पर "संघ की संसद्" कर दिया गया और अन्य अनुच्छेदों में उसका उल्लेख सिर्फ "संसद्" के रूप में किया गया। जहां तक काउंसिल ऑफ स्टेट्स का संबंध था, यद्यपि समिति ने काउंसिल की सदस्य संख्या 250 ही बनाए रखी तथापि उसने आयरलैंड के अनुभव को देखते हुए कार्यशील पैनलों से संबंधित उपबंध का लोप कर दिया और उसके स्थान पर ऐसा उपबंध रखा जिसके द्वारा राष्ट्रपति को काउंसिल ऑफ स्टेट्स में ऐसे पन्द्रह सदस्यों को नामनिर्देशित करने की शक्ति प्रदान की गई थी जिन्हें निम्नलिखित विषयों का अनुभव या ज्ञान हो: (क) साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा; (ख) कृषि, मत्स्य-पालन या तत्संबंधी विषय; (ग) इंजीनियरी और वास्तुकला और (घ) लोक प्रशासन और सामाजिक सेवाएं।

काउंसिल ऑफ स्टेट्स के निर्वाचित सदस्यों को राज्यों का प्रतिनिधि कहा गया था और उन्हें प्रत्येक विधान-मंडल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना था या किसी राज्य में दो सदनों वाला विधान-मंडल होने पर निम्न सदन के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना था। संसद् के प्रत्येक सदन का सत्र प्रत्येक वर्ष

में कम से कम एक बार की बजाय, जैसाकि प्रारूप में पहले उपबंध किया गया था, प्रत्येक छह महीने में कम से कम एक बार होना था। संसद् सदस्यों की निरर्हता के लिए व्यापक उपबंध किया गया। चौथी अनुसूची का लोप कर दिया गया और चुनाव संबंधी मामलों का विनियमन संसदीय अधिनियमों पर छोड़ दिया गया।¹²

संविधान सभा ने 3 और 4 जनवरी, 18 से 20 एवं 23 मई और 8 एवं 9 जून, 1949 को हुई अपनी बैठकों में इन उपबंधों पर चर्चा की। चर्चा के दौरान कई संशोधन रखे गए। एक सदस्य ने 'कार्जिसिल ऑफ स्टेट्स' शब्दों का लोप करने के लिए संशोधन रखा क्योंकि उनका विचार था कि द्वितीय सदन की न तो कोई आवश्यकता है और न ही कोई उपयोगिता है। वे चाहते थे कि कार्जिसिल ऑफ स्टेट्स के गठन के तरीके को बदला जाए क्योंकि उच्च सदन के गठन से हाउस ऑफ द पीपल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।¹³ इस संशोधन का विरोध करते हुए श्री अनंतशयनम् अय्यंगर ने कहा कि ऐसा दूसरा सदन आवश्यक है जहां लोगों की प्रतिभा को पूरी तरह से प्रदर्शित होने का अवसर मिले। उनका यह भी कहना था कि निम्न सदन द्वारा जल्दबाजी में पारित किया गया कोई कानून उच्च सदन की धीमी चाल से निष्प्रभावी हो जाएगा।¹⁴ एक अन्य संशोधन का उद्देश्य नामनिर्देशित सदस्यों से संबंधित उपबंध को हटाना था। संशोधन का प्रस्ताव करने वाले सदस्य द्वारा यह तर्क दिया गया कि नामनिर्देशन चाहे कितने ही छोटे पैमाने पर क्यों न किया जा रहा हो "वह हमारे विधायी निकायों की संरचना के सामंजस्य को बिगाड़ता है और निर्वाचन के सिद्धांत पर मूल रूप से कुठाराघात करता है।"¹⁵ एक और संशोधन के द्वारा यह सुझाव दिया गया कि कार्जिसिल ऑफ स्टेट्स में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए अर्थात् राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या समान होनी चाहिए और प्रत्येक संघटक राज्य को वयस्क नागरिकों के मतों के द्वारा पांच सदस्य निर्वाचित करने चाहिए।¹⁶

डा० अम्बेडकर ने कुछ संशोधन उपस्थित किए। उनका प्रस्ताव था कि नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या को घटाकर बारह कर देना चाहिए।¹⁷ उनका आशय यह था कि यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा कुल मिलाकर पन्द्रह सदस्य नामनिर्देशित किए जाएंगे तथापि इनमें से बारह सदस्य अधिक सरल शब्दों में साहित्य, कला, विज्ञान या समाज-सेवा का ज्ञान और अनुभव रखने वाले व्यक्ति होंगे; अन्य तीन सदस्यों के संबंध में उन्होंने 18 मई, 1949 को एक और संशोधन उपस्थित किया कि राष्ट्रपति संसद् के किसी सदन में पुरःस्थापित किए गए या पुरःस्थापित किए जाने वाले किसी विधेयक के संबंध में सहायता देने के लिए समय-समय पर तीन से अनधिक सदस्यों को नामनिर्देशित कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को दोनों में से किसी सदन में या समितियों में या संयुक्त सत्रों में बोलने का अधिकार होगा किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा। तथापि आगे विचार करने पर उन्होंने इस संशोधन को वापस ले लिया और इस प्रकार नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या बारह हो गई।¹⁸ [संविधान के पुनरीक्षण की अवस्था में 'लेटर्स (साहित्यिक उपलब्धियां, विद्वत्ता)' शब्द के स्थान पर 'लिटरेचर (साहित्य)' शब्द प्रतिस्थापित कर दिया गया।] डा० अम्बेडकर ने यह संशोधन भी रखा कि कार्जिसिल ऑफ स्टेट्स की अधिकतम सदस्य संख्या 250 होनी चाहिए और यह आवश्यक नहीं है कि वह उसकी वास्तविक संख्या हो, जैसाकि संविधान के प्रारूप में प्रस्ताव किया गया था। साथ ही उनका संशोधन था कि राज्यों के बीच स्थानों (सीटों) का आवंटन (जिसमें नामनिर्देशित सदस्यों के स्थान शामिल नहीं हैं) स्वयं संविधान में ही एक पृथक् अनुसूची में समाविष्ट किया जाना चाहिए। [ऐसा अनुसूची 3क के रूप में किया गया जो 17 अक्टूबर, 1949 को असेम्बली के समक्ष रखी गई थी और बिना किसी वाद-विवाद के स्वीकार कर ली गई थी।]¹⁹

इन उपबंधों पर अनेक अन्य संशोधन उपस्थित किए गए। एक सदस्य ने कार्जिसिल ऑफ स्टेट्स की सदस्य-संख्या 150 निश्चित करने के लिए एक संशोधन उपस्थित किया। उनका विचार था कि लोगों की

बड़ी संख्या से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा और यदि उनकी संख्या घटा दी जाए तो प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होगा बल्कि धन और समय की भी बचत होगी।²⁰ एक और संशोधन उपस्थित किया गया जिसका उद्देश्य नामनिर्देशन के उपबंध को पूरी तरह से हटा देना था और उसके स्थान पर कार्यशील प्रतिनिधित्व को लाने का सुझाव दिया गया। संबंधित सदस्य का कहना था: “यदि हम राष्ट्रपति को बारह व्यक्तियों को नामनिर्देशित करने का अधिकार दे देंगे तो उनके विरुद्ध पक्षपात और भाई-भतीजावाद के कटु आरोप लगाए जाएंगे जो वांछनीय नहीं होगा।”²¹ एक अन्य सदस्य अपने संशोधन द्वारा यह चाहते थे कि नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या सदन के सदस्यों की वास्तविक संख्या के किसी अनुपात में होनी चाहिए और इसलिए उन्होंने यह सुझाव दिया कि यह अनुपात छह प्रतिशत का होना चाहिए।²² एक संशोधन में यह सुझाव दिया गया कि यह कहने की बजाय कि राष्ट्रपति को उपबंधित रीति से बारह सदस्यों को नामनिर्देशित करना चाहिए, यह कहा जाना चाहिए कि उन्हें दर्शायी गई कोटियों में से नामनिर्देशित किया जाना चाहिए।²³ एक अन्य संशोधन में सुझाव दिया गया था कि ऐसे एक ‘आत्मनिरीक्षणशील’ भारत के पुनर्निर्माण के लिए ऐसे व्यक्तियों को प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति, कला और विज्ञान और समाज-सेवा का और उनके इतिहास का ज्ञान होना चाहिए और उन्हें इन विषयों के प्रति वस्तुतः समर्पित होना चाहिए।²⁴ एक अन्य सदस्य यह चाहते थे कि राष्ट्रपति की पसंद को सिर्फ चार कोटियों तक सीमित कर देने और दूसरी कोटियों को शामिल न करने की बजाय नामनिर्देशनों के लिए, “दर्शन, धर्म, विधि, पत्रकारिता, वाणिज्य और उद्योग की कोटियां भी रखी जानी चाहिए।”²⁵ एक सदस्य ने यह स्पष्ट किए जाने के लिए एक संशोधन उपस्थित किया कि जहां तक काउंसिल ऑफ स्टेट्स में प्रतिनिधियों के निर्वाचन का संबंध है, निर्वाचित सदस्यों और नामनिर्देशित सदस्यों के बीच कोई भेद नहीं किया जाना चाहिए।²⁶

एक अनुसूची के अनुसार राज्यों के बीच स्थानों का आवंटन करने के संबंध में एक सदस्य ने सुझाव दिया कि इसके लिए जनसंख्या को आधार बनाया जाना चाहिए जबकि एक अन्य सदस्य जनसंख्या को उसका आधार बनाने के लिए एक सूत्र (फॉर्मूला) का समावेश करना चाहते थे।²⁷ एक संशोधन में प्रत्येक इकाई के लिए समान प्रतिनिधित्व और प्रति इकाई अधिकतम तीन प्रतिनिधियों का सुझाव दिया गया था।²⁸ एक संशोधन यह चाहता था कि यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि यथासंभव प्रत्येक इकाई को काउंसिल में प्रतिनिधित्व मिले।²⁹

एक सदस्य ने सुझाव दिया कि जहां किसी राज्य के विधान-मंडल में दो सदन हैं वहां राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए और निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाना चाहिए।³⁰ असेम्बली ने बाद वाले सुझाव को स्वीकार कर लिया।³¹

डा० अम्बेडकर ने एक नए अनुच्छेद का प्रस्ताव किया जिसमें यह उपबंध था कि संसद् का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित होने हेतु किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिए और वह हाउस ऑफ द पीपल के मामले में कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के मामले में कम से कम पैंतीस वर्ष की आयु का होना चाहिए। परंतु काउंसिल ऑफ स्टेट्स के मामले में श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा रखे गए एक संशोधन के द्वारा आयु की अर्हता घटाकर तीस वर्ष कर दी गई। इस अनुच्छेद में यह भी उपबंध किया गया था कि संसद् विधि द्वारा अन्य अर्हताएं भी विहित कर सकती है। असेम्बली ने यह संशोधन स्वीकार कर लिया।³² संसद् का आह्वान करने से संबंधित अनुच्छेद के प्रारूप पर चर्चा के दौरान एक सदस्य द्वारा यह संशोधन उपस्थित किया गया कि संसद् का सत्र निरंतर चलता रहना चाहिए। एक सदस्य का संशोधन यह था कि प्रत्येक वर्ष कम से कम दो सत्रों की बजाय तीन सत्र होने चाहिए।³³ डा० अम्बेडकर का मत था कि चूंकि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी है इसलिए संसद् के सत्र

और अधिक बार होंगे। वास्तव में उन्हें आशंका थी कि संसद् के सत्र इतनी बार होंगे और इतने लंबे चलेंगे कि संभवतः स्वयं सदस्य ही उनसे उकता जाएंगे। कारण यह था कि सरकार अच्छे प्रशासन के लिए ही नहीं बल्कि दल के कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए आवश्यक कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए भी उत्तरदायी होगी। अतः उनका विचार था कि उन्होंने प्रत्येक वर्ष कम से कम दो सत्रों का जो प्रस्ताव किया है वह पर्याप्त है। एक संशोधन यह भी था कि यदि राष्ट्रपति तीन महीने की अवधि तक किसी भी सदन का सत्र बुलाने में चूक जाते हैं तो यथास्थिति अध्यक्ष या सभापति को ऐसे मामले में सत्र बुलाने की शक्ति होनी चाहिए। डा० अम्बेडकर का कहना था कि यह व्यावहारिक नहीं है क्योंकि सदन में क्या कार्य होगा यह बताना कार्यपालिका का काम है और इसलिए किए जाने वाले कार्य के बारे में समुचित व्यवस्था किए बिना पीठासीन अधिकारी को सदन की बैठक बुलाने की शक्ति देने से ही कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।¹⁴

श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने एक नया अनुच्छेद रखा जोकि अब अनुच्छेद 92 है। इसमें यह उपबंध किया गया था कि जब काउंसिल ऑफ स्टेट्स में उपराष्ट्रपति को (जो काउंसिल का पदेन सभापति होगा) उसके पद से हटाने या काउंसिल के उपसभापति को उसके पद से हटाने के लिए किसी संकल्प पर चर्चा हो रही हो तब संकल्प से संबंधित पीठासीन अधिकारी पीठासीन नहीं होगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया।¹⁵ प्रारूपण समिति ने पुनरीक्षण की अवस्था में संकल्प से संबंधित व्यक्ति को काउंसिल में बोलने का अधिकार देने के लिए एक और खंड जोड़ा हालांकि इस खंड में उसे मतदान करने का अधिकार नहीं दिया गया था।

संविधान के प्रारूप में मूलतः यह प्रस्ताव किया गया था कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा धन विधेयक को तीस दिन की अवधि के भीतर हाउस ऑफ द पीपल को लौटा दिया जाना चाहिए। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी द्वारा रखे गए एक संशोधन द्वारा इस अवधि को घटाकर इक्कीस दिन कर दिया गया और उनके द्वारा और साथ ही डा० अम्बेडकर द्वारा इस संबंध में एक और संशोधन रखे जाने पर इस अवधि को भी घटाकर चौदह दिन कर दिया गया।¹⁶

डा० अम्बेडकर ने एक नए अनुच्छेद का प्रस्ताव किया जिसमें संसद् के प्रत्येक सदन के लिए पृथक् सचिवीय कर्मचारियों का उपबंध किया गया था। उन्होंने याद दिलाया कि भारत में कार्यपालक सरकार द्वारा विधान-मंडलों को सचिवीय सहायता प्रदान करने की प्रथा रही है और इस बात का भी उल्लेख किया कि बीस के दशक के बाद के वर्षों में इस संबंध में सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली के अध्यक्ष श्री विट्ठलभाई पटेल और तत्कालीन सरकार के बीच एक विवाद उत्पन्न हुआ था। इसके फलस्वरूप उस असेम्बली के लिए एक अलग सचिवालय स्थापित किया गया जो पीठासीन अधिकारी के नियंत्रण के अधीन था। किंतु प्रदेशों में इस प्रथा को नहीं अपनाया गया। डा० अम्बेडकर का विचार था कि इसके लिए स्वयं संविधान में ही उपबंध करना आवश्यक है। इस अनुच्छेद को व्यापक समर्थन मिला और असेम्बली द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया।¹⁷

संवैधानिक सलाहकार श्री बी० एन० राव विदेशों के विख्यात न्यायशास्त्रियों और संवैधानिक विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संविधान में ऐसा उपबंध करना आवश्यक है जिसके द्वारा राष्ट्रहित में आवश्यक होने पर केन्द्र उन मामलों के संबंध में कानून बना सके जो सिर्फ प्रादेशिक क्षेत्र के दायरे में आते हैं। अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि यदि काउंसिल ऑफ स्टेट्स उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित करे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद् प्रादेशिक विधायी सूची में उल्लिखित किसी विषय के संबंध में कानून बनाए तो संसद् को उस विषय के संबंध में भारत परिसंघ के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति होगी। यह भी उपबंध किया गया कि इस प्रकार स्वीकृत संकल्प बाद में

कार्जिसल ऑफ स्टेट्स द्वारा इसी बहुमत से पारित संकल्प द्वारा रद्द किया जा सकता है। श्री बी० एन० राव ने यह स्पष्ट किया कि इस संशोधन का उद्देश्य एक ऐसे दोष को दूर करना है जो कनाडा के संविधान में पाए गए दोष की तरह है। प्रस्तावित उपबंध में कार्जिसल ऑफ स्टेट्स के विशेष बहुमत की आवश्यकता का आशय प्रादेशिक क्षेत्र में अनुचित अतिक्रमण को रोकना है। प्रारूपण समिति ने प्रारूप अनुच्छेद 226 में श्री बी० एन० राव के सुझाव को उसके उस अंश को छोड़कर स्वीकार कर लिया जिसमें पूर्वतर संकल्प को रद्द करने के लिए दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता बताई गई थी।

किंतु विशेष समिति ने (जिसमें अधिकांशतः संघ संविधान समिति, संघ की शक्तियों संबंधित समिति और प्रादेशिक संविधान समिति के कतिपय सदस्य थे) यह सिफारिश की कि कार्जिसल ऑफ स्टेट्स में ऐसे संकल्प को “संबंधित राज्य सरकारों से पहले परामर्श किए बिना” नहीं उपस्थित किया जाना चाहिए और जिस अवधि के लिए संसद् को यह शक्ति होगी वह तीन वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए और उसकी अवधि पुनः बढ़ाने के लिए, जो एक बार में तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी, कार्जिसल ऑफ स्टेट्स द्वारा इसी प्रकार से नए संकल्प पारित किए जा सकते हैं।

उपरोक्त अनुच्छेद का प्रारूप विधायी संबंधों के अध्याय में एक ऐसा उपबंध था जिसकी सर्वाधिक आलोचना हुई। कुछ सदस्यों ने कहा कि इसका स्वरूप परिसंघ-विरोधी है और वह किसी भी परिसंघीय पद्धति से असंगत है और इसलिए उसे निकाल दिया जाना चाहिए। यह तर्क भी दिया गया कि यदि इस अनुच्छेद को बनाए रखा जाएगा तो उसके संशोधन के संबंध में संविधान में उल्लिखित उपबंध अपना सारा महत्त्व खो देगा। श्री बी० एन० राव ने इस ओर ध्यान दिलाया कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त शक्ति का केन्द्र द्वारा तभी प्रयोग किया जाएगा जब कार्जिसल ऑफ स्टेट्स, जो संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती है, दो-तिहाई बहुमत से अपेक्षित संकल्प को पारित कर दे। इसके अतिरिक्त प्रारूपण समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधन को देखते हुए अवधि के मामले में केन्द्र की शक्ति सीमित हो सकती है और इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि संकल्प का प्रभाव संविधान के किसी संशोधन की तरह दूरगामी हो। प्रारूपण समिति ने, जिसने अनुच्छेद के प्रारूप पर पुनर्विचार किया, यह अनुभव किया कि राज्यों से पूर्व परामर्श करने की आवश्यकता का उपबंध करके, जैसीकि विशेष समिति द्वारा सिफारिश की गई थी, इस उपबंध को हल्का करने की आवश्यकता नहीं है। अतः प्रारूपण समिति ने इस शर्त को समाप्त कर दिया।³⁸

संविधान सभा ने 13 जून, 1949 को संविधान के प्रारूप में विधायी संबंधों से संबंधित अनुच्छेदों पर विचार किया। डा० अम्बेडकर ने एक संशोधन उपस्थित किया जिसमें अनुच्छेद के प्रारूप के अधीन दी गई शक्ति के दायरे को एक वर्ष तक के लिये सीमित कर दिया गया और यह उपबंध भी किया गया कि जिस रीति से मूल संकल्प पारित किया गया है उसी रीति से कार्जिसल ऑफ स्टेट्स द्वारा बाद में पारित संकल्प द्वारा पिछले संकल्प की अवधि को एक बार में एक वर्ष की अवधि के लिये बढ़ाया जा सकेगा और ऐसे संकल्प के अनुसरण में संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि, संकल्प के प्रवृत्त न रहने के बाद छह महीने की समाप्ति के बाद, प्रभावी नहीं रहेगी।³⁹ यद्यपि इन संशोधनों से मूलतः प्रस्तावित अनुच्छेद की चुभन काफी हद तक कम हो गई।⁴⁰ तथापि इस उपबंध की आलोचना होती रही। कुछ सदस्यों का विचार था कि इन संशोधनों से उस प्रयोजन के लिए उपबंध की उपयोगिता काफी कम हो जाती है जिसके लिए वह लाया गया है और राज्यों संबंधी मामले पर कानून अधिनियमित करने के लिए संसद् को प्राधिकार देने की प्रक्रिया को अनावश्यक रूप से बोझिल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यह तर्क भी दिया गया कि चूंकि कार्जिसल ऑफ स्टेट्स में केन्द्र को प्रत्येक वर्ष दो-तिहाई बहुमत मिलने की संभावना बहुत कम है, इसलिए केन्द्र द्वारा कोई बड़ी स्कीम हाथ में नहीं ली जा सकेगी। दूसरी ओर कुछ सदस्यों द्वारा यह माना

जाता रहा कि अनुच्छेद आपत्तिजनक है और शक्तियों के परिसंघीय वितरण की संकल्पना के विरुद्ध है। उनका कहना था कि संविधान के प्रारूप के दो अन्य प्रस्तावित उपबंधों को देखते हुए यह उपबंध अनावश्यक है। उनमें से पहला उपबंध वह था जिसके अधीन राज्य विधान-मंडल राज्यों के किसी विषय पर कानून बनाने के लिए संसद् को हमेशा प्राधिकृत कर सकते थे (प्रारूप अनुच्छेद 229) और दूसरा उपबंध (अर्थात् प्रारूप अनुच्छेद 227) वह था जिसके अधीन आपात की स्थिति में संसद् को राज्य सूची के किसी भी विषय के संबंध में कोई कानून बनाने की स्वतंत्र और अप्रतिबंधित शक्ति दी गई थी। सदस्यों का विचार था कि प्रस्तावित उपबंध निश्चय ही 'शरारतपूर्ण' है क्योंकि उसके द्वारा सामान्य स्थिति में भी संसद् को राज्य विधान-मंडल की इच्छा की अनदेखी करते हुए राज्यों की सूची का अतिक्रमण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने अनुच्छेद की आलोचना का विस्तार से उत्तर दिया। उनका कहना था कि डा० अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद के संशोधन का प्रस्ताव किया है वह मूल अनुच्छेद से भिन्न है और उसका दुरुपयोग नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि यदि कोई शरारत हो भी तो वह एक वर्ष की छोटी सी अवधि तक सीमित रहेगी और सिर्फ इसी सीमा के कारण केन्द्र को अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इस अनुच्छेद का उपयोग करने का प्रलोभन नहीं होगा और यदि अनुच्छेद का उपयोग होगा भी तो भी वह निश्चित रूप से एक विधि-सम्मत और उपयोगी प्रयोजन के लिए होगा। उन्होंने नियंत्रण के उन उपायों का उल्लेख किया जिनका इकाइयों द्वारा काउंसिल ऑफ स्टेट्स में अपने प्रतिनिधियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। इसे देखते हुए इसकी काफी गुंजाइश थी कि राज्य अपने प्रतिनिधियों को यह कहें कि ऐसी केन्द्रीय शक्तियों का नवीकरण नहीं किया जाना चाहिए। यह बताते हुए कि इस अनुच्छेद के उपबंध और उस प्रारूप अनुच्छेद 229 के उपबंध के बीच कितना अंतर है जिसके अधीन राज्यों के विषयों पर कानून बनाने के लिए राज्यों द्वारा संसद् को प्राधिकृत किया जा सकता है, श्री कृष्णमाचारी ने कहा कि प्रारूप अनुच्छेद 229 का आशय मूलतः उन मामलों में होने वाली कार्यवाही में तालमेल करना है जिनमें स्वयं प्रदेशों की रुचि हो। ज्यादातर ऐसा होगा कि सिर्फ दो प्रदेशों की रुचि हो, इसलिए यह केन्द्र द्वारा कानून में तालमेल करने के लिए एक समर्थकारी उपबंध है। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद के अधीन जो कार्यवाही होगी उसमें बहुत समय लगेगा जबकि विचाराधीन प्रारूप अनुच्छेद 226 का उद्देश्य उन स्थितियों के लिए व्यवस्था करना है जहां केन्द्र यह चाहता हो कि किसी राज्य के किसी मामले में उन परिस्थितियों में अविलम्ब कार्यवाही की जाए जब आपात उपबंध लागू करना आवश्यक न हो या उसे लागू नहीं किया जा सकता हो। वाद-विवाद के अंत में यथासंशोधित अनुच्छेद मतदान द्वारा स्वीकृत हुआ और संविधान में शामिल कर दिया गया।¹¹

प्रारूप अनुच्छेद 282-ग का संबंध उस स्थिति में संसद् के द्वारा विधि द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन से था जब काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा इस प्रयोजन के लिए दो-तिहाई बहुमत द्वारा अपेक्षित संकल्प पारित कर दिया जाए। इस उपबंध की सिर्फ यह आलोचना की गई कि ऐसी सेवाओं को स्थापित करने का निर्णय काउंसिल ऑफ स्टेट्स की बजाय सम्पूर्ण संसद् पर छोड़ दिया जाना चाहिए। किंतु डा० अम्बेडकर का कहना था कि राज्यों को अपनी ही सेवाएं स्थापित करने की जो स्वायत्तता दी गई है उस पर कुछ हद तक इस अनुच्छेद से हमला होता है और यह स्पष्ट है कि राज्यों की स्वायत्तता लेने के लिए केन्द्र को अधिकार देने का एक ही तरीका है और वह यह है कि इस संबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स के दो-तिहाई सदस्यों की सहमति ली जाए क्योंकि वह ऐसा निकाय है जिसकी स्थापना मूलतः राज्यों के मत को व्यक्त करने के लिए और राज्यों के हितों की रक्षा करने के लिए की गई है। काउंसिल पूर्व कल्पना से राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है और उसका संकल्प राज्यों द्वारा दिए गए प्राधिकार के समान होगा। सभा ने अनुच्छेद को स्वीकार कर लिया।¹²

इस प्रकार संविधान में काउंसिल ऑफ स्टेट्स से संबंधित उपबंधों का स्वरूप सामने आया। संविधान के पुनरीक्षण की अवस्था में चौथी अनुसूची में कुछ परिवर्तन किए गए और नए राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के गठन के फलस्वरूप उसमें समय-समय पर संशोधन होते रहे। भारतीय संघ की इकाइयों का राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के रूप में नामकरण कर दिए जाने के फलस्वरूप संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 80 में कुछ संशोधन किए गए। पृथक् अध्याय में इसका वर्णन किया गया है कि राज्य सभा की संरचना में समय-समय पर किस प्रकार परिवर्तन होते रहे जिनके फलस्वरूप 1949 में जब संविधान स्वीकृत किया गया था, राज्य सभा के निर्वाचित सदस्यों की जो संख्या 205 थी, आज 233 हो गई है। 1954 में दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों की घोषणाओं के द्वारा एक उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इन घोषणाओं के द्वारा काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल को भारतीय नाम दे दिए गए और उन्हें क्रमशः राज्य सभा और लोक सभा कहा जाने लगा।⁴³

23 जून, 1971 को सदनों के भारतीय नामों के संबंध में एक दिलचस्प औचित्य प्रश्न उठाया गया। सदन की कार्यावलि में कहा गया था कि आंतरिक सुरक्षा विधेयक पर, “जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया है”, विचार किया जाएगा। एक सदस्य ने अनुच्छेद 79 का हवाला देते हुए, जिसमें सदनों के नाम राज्य सभा और लोक सभा की बजाय काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल दिए गए थे, एक औचित्य प्रश्न उठाया क्योंकि सदस्य के मतानुसार उस दिन की कार्यावलि में “लोक सभा” शब्दों का प्रयोग असंवैधानिक था। उपसभापति ने अन्य बातों के साथ यह कहते हुए औचित्य प्रश्न को अस्वीकार कर दिया कि शुरू से ही “लोक सभा” और “राज्य सभा” शब्दों का इस्तेमाल होता रहा है और सभी पत्रों में इन नामों का उल्लेख किया जाता रहा है।⁴⁴

दो सदनों की प्रणाली हमेशा से ही विवाद का मुद्दा रही है और राजनैतिक दार्शनिकों और संविधान के पंडितों के बीच उस पर जोर-शोर से बहस होती रही है। एक ओर विख्यात संविधानवेत्ता एबे सीयेज़ दो सदनों की संकल्पना को पूरी तरह से नकारते हुए कहते हैं: “यदि दूसरा सदन पहले सदन से सहमत नहीं होता तो वह शरारती (अनिष्टकर) है और यदि वह सहमत होता है तो वह अनावश्यक है” और दूसरी ओर सर हेनरी मेने यह दलील देते हैं कि किसी प्रकार के दूसरे सदन का होना न होने से बेहतर है। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, संविधान सभा में चर्चा के दौरान काउंसिल ऑफ स्टेट्स भी इस विवाद से परे नहीं रही। कुछ सदस्यों के विचार में भारतीय संसद के लिए दूसरा सदन अनावश्यक था जबकि दूसरे सदस्यों की दृष्टि में वह विशेष रूप से एक परिसंघीय ढांचे के संदर्भ में आवश्यक था। किंतु अंततः संघ के स्तर पर दो सदनों की पद्धति हमारे संविधान का एक अभिन्न अंग बन गई। ऐसा होने पर भी कालांतर में लोक सभा में राज्य सभा को समाप्त करने के लिए कुछ इक्का-दुक्का किंतु असफल प्रयास हुए जिनका इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है।

संविधान के अधीन संसद के सदनों के गठन के लगभग दो वर्ष के भीतर लोक सभा में एक संकल्प पर चर्चा हुई थी जिसमें कहा गया था कि केन्द्र में दूसरे सदन का होना नितांत अनावश्यक है और इसलिए इस प्रयोजन के लिए संविधान में संशोधन किया जाना चाहिए। इस संकल्प को अस्वीकार कर दिया गया।⁴⁵ बाद में लोक सभा में एक और संकल्प उपस्थित किया गया जिसमें सरकार को निदेश दिया गया था कि वह राज्य सभा को समाप्त करने का उपबंध करने के लिए एक संविधान संशोधन लाए। इस संकल्प को वापस ले लिया गया।⁴⁶

1971, 1972 और 1975 में लोक सभा में गैर-सरकारी सदस्यों ने एक-एक करके ऐसे तीन संविधान संशोधन विधेयकों को पुरःस्थापित करने का प्रयास किया जिनका उद्देश्य राज्य सभा को समाप्त करना था। गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी लोक सभा की समिति ने इन विधेयकों को पुरःस्थापित करने की सिफारिश नहीं की। समिति ने अनुभव किया कि इन विधेयकों से “संविधान के अनुच्छेद 1 के खंड (1) में दिए गए उस मूल सिद्धांत पर आंच आती है जिस पर स्वयं संविधान का ढांचा टिका हुआ है।” समिति ने केशवानन्द भारती के मामले में उच्चतम न्यायालय की इस टिप्पणी पर ध्यान दिया कि⁴⁷ “संविधान का अनुच्छेद 368 संसद को संविधान की आधारभूत संरचना या ढांचे में कोई परिवर्तन करने का सामर्थ्य प्रदान नहीं करता।”⁴⁸

1981 में लोक सभा में एक गैर-सरकारी सदस्य ने राज्य सभा और राज्यों की विधान परिषदों को समाप्त करने के लिए एक और संविधान संशोधन विधेयक पुरःस्थापित करने का प्रयास किया। आरंभ में समिति ने इस विधेयक को भी पुरःस्थापित करने की सिफारिश नहीं की।⁴⁹ जब समिति का संबंधित प्रतिवेदन लोक सभा में स्वीकृति के लिए पेश किया गया तब प्रस्ताव पर एक संशोधन के स्वीकार कर लिए जाने पर विधेयक को पुनर्विचार के लिए समिति को पुनः सौंप दिया गया।⁵⁰ तदनुसार समिति ने विधेयक की फिर से जांच की, उस पर विधि मंत्रालय का मत प्राप्त किया,⁵¹ संबंधित सदस्य के पक्ष को सुना और विधेयक पर आगे विचार स्थगित कर दिया।⁵² किन्तु अंततोगत्वा विधेयक को पुरःस्थापित नहीं किया गया।

इसके विपरीत जब लोक सभा भंग थी तब राज्य सभा में धन और वित्तीय मामलों में अपनी शक्तियों का विस्तार करने का एक प्रयास किया गया। यह प्रयास भी राज्य सभा को समाप्त करने के प्रयासों की तरह विफल रहा।

30 अगस्त, 1991 को एक गैर-सरकारी सदस्य ने राज्य सभा में एक संविधान संशोधन विधेयक पुरःस्थापित किया जिसका उद्देश्य “लोक सभा के भंग होने या सरकार द्वारा कार्य न करने के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकने वाली अस्थायी वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से” संविधान में एक नए अनुच्छेद 117-क को अंतःस्थापित करना था। अन्य बातों के साथ इस विधेयक का उद्देश्य यह था कि उस समय लोक सभा की सभी वित्तीय शक्तियाँ राज्य सभा को प्रदान कर दी जाएँ जब लोक सभा भंग रही हो या भंग कर दी गई हो या ऐसी कोई अन्य आकस्मिक स्थिति हो जब संविधान के अधीन जिस वित्तीय कार्य को पूरा किया जाना आवश्यक हो उसे उस सदन द्वारा समय पर पूरा न किया जा सकता हो। यह विधेयक 1991 में उत्पन्न हुई उस स्थिति के संदर्भ में था जब नियमित बजट पेश नहीं किया जा सका और लेखानुदान ही पेश करना पड़ा। विधेयक पर 21 दिसम्बर, 1991 और 13 मार्च, 1992 को चर्चा हुई किंतु उसे बाद में वापस ले लिया गया।

13 मई, 1952 को राज्य सभा की पहली बैठक हुई। इस बैठक के कुछ दिन बाद ही यह स्पष्ट करने का अवसर आया कि राज्य सभा से किस प्रकार की भूमिका निभाने की आशा की जाती है। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के प्रथम सभापति के रूप में चुने जाने पर जो बधाइयाँ दी गई थीं उनका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था:

आम धारणा है कि यह सदन सरकारों को बना या गिरा नहीं सकता और इसलिए वह एक अनावश्यक निकाय है। किंतु पुनरीक्षण करने वाला कोई सदन कई ऐसे कार्य कर सकता है जो लाभदायक हो सकते हैं। संसद् कानून बनाने वाला निकाय ही नहीं है, वह विचार-विमर्श करने वाला निकाय भी है। जहाँ तक इसके विचार-विमर्श करने संबंधी कार्यों का संबंध है, हमें बहुत बहुमूल्य योगदान देने के अवसर मिलेंगे और हम जो कार्य करेंगे उसके आधार पर ही हम इस द्विसदनात्मक प्रणाली का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं जो अब हमारे संविधान का अभिन्न अंग है। अतः यह एक परीक्षा है जिससे हमें गुजरना है। हम पहली बार केन्द्र में एक द्वितीय सदन के साथ संसदीय प्रणाली के अंतर्गत कार्य करना शुरू कर रहे हैं और हमें इस देश की जनता के समक्ष इस बात का औचित्य सिद्ध करने का भरसक प्रयास करना चाहिए कि किसी कानून को जल्दबाजी में बनने से रोकने के लिए द्वितीय सदन नितांत आवश्यक है।⁵³

श्री एन० गोपालस्वामी अय्यंगर और डा० अम्बेडकर संविधान के संस्थापक थे और दोनों ही राज्य सभा के सदस्य बने। इन दोनों व्यक्तियों और राज्य सभा के प्रथम सभापति डा० राधाकृष्णन् की उपरोक्त टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में एक विधायी सदन के रूप में (कानून बनाने में बाधा न बनते हुए कानून बनाने में जल्दबाजी को रोककर और उसका पुनरीक्षण करके), परिसंघात्मक सदन के रूप में (राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करके) और विचार-विमर्श करने वाले सदन के रूप में (महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर मर्यादित ढंग से चर्चा करके) राज्य सभा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली थी। संविधान निर्माताओं ने कतिपय धन संबंधी/वित्तीय मामलों, पूर्तियों (अनुदानों की मांगों) पर मतदान और “सरकारों को बनाने या गिराने” की शक्तियों को छोड़कर दोनों सदनों (लोक सभा और राज्य सभा) को समान शक्तियाँ प्रदान कीं।

संविधान के अधीन धन विधेयक और कतिपय वित्तीय विधेयकों को छोड़कर, जिनके संबंध में अंतिम निर्णय लोक सभा का होता है, एक विधायी निकाय के रूप में अन्य विधेयकों को आरंभ करने के लिए राज्य सभा की शक्तियों पर कोई सीमा नहीं लगाई गई है। सामान्य विधान के संबंध में दोनों सदनों के बीच कोई विधायी गतिरोध उत्पन्न होने पर उसे दूर करने के लिए उनकी संयुक्त बैठक आयोजित करने की व्यवस्था की गई है। पिछले वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों के लिए अनेक महत्वपूर्ण कानूनों को राज्य सभा में आरंभ किया गया है। दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959 में किए जाने वाले संशोधनों पर दोनों सदनों के बीच 1961 में संयुक्त बैठक द्वारा मतभेद दूर कर दिया गया, 1978 में बैंकिंग सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 को राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर और पुनः आतंकवाद निवारक विधेयक, 2002 को 2002 में राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर संयुक्त बैठक के द्वारा दोनों सदनों के बीच गतिरोध को दूर किया गया। पुनरीक्षण करने वाले सदन के रूप में भी राज्य सभा ने लोक सभा द्वारा पारित अनेक विधेयकों में परिवर्तन करने की सिफारिशों की हैं और लोक सभा ने उन्हें स्वीकार किया है।

संसद् की संवैधानिक शक्ति के प्रयोग अर्थात् संविधान में संशोधन करने के संबंध में राज्य सभा और लोक सभा दोनों को एक-सी शक्तियां प्राप्त हैं। संविधान संशोधन विधेयक संसद् के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किया जा सकता है और उसे प्रत्येक सदन के विशेष बहुमत से ही पारित किया जा सकता है। यदि राज्य सभा और लोक सभा के बीच कोई असहमति होती है तो विधेयक अस्वीकृत हो जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी संवैधानिक विधेयक पर उत्पन्न हुए गतिरोध को दूर करने के लिए संयुक्त बैठक बुलाने का कोई उपबंध नहीं है। 1970 में तत्कालीन नरेशों के प्रिवी पर्सों को समाप्त करने से संबंधित संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था, राज्य सभा में अपेक्षित समर्थन न मिलने पर पारित नहीं किया जा सका। पुनः 1989 में संविधान (चौसठवां और पैंसठवां संशोधन) विधेयकों को, जिन्हें लोक सभा द्वारा पहले पारित किया जा चुका था, राज्य सभा में अपेक्षित बहुमत न मिलने के कारण पारित नहीं किया जा सका। 1978 में राज्य सभा ने संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक में महत्वपूर्ण संशोधन पुरःस्थापित किए और उन्हें लोक सभा ने स्वीकार किया और वे संविधान का अंग बने।

जब तत्कालीन सरकार राज्य सभा में बहुमत में नहीं थी, तो इसने सावधानीपूर्वक कदम उठाया। 12 फरवरी, 1999 को बिहार राज्य⁵⁴ के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति के द्वारा एक घोषणा जारी की गई। जैसाकि संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (3) के अधीन अपेक्षित है, लोक सभा द्वारा स्वीकृत⁵⁵ किए जाने के बावजूद घोषणा का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए सांविधिक संकल्प राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया। बल्कि सरकार ने राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई घोषणा को वापस लेने का निर्णय लिया और दिनांक 12 फरवरी, 1999 को बिहार राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा की गई घोषणा को वापस करते हुए, जैसाकि संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (3) के अधीन अपेक्षित है, संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (2) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई घोषणा की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी गई।⁵⁶

धन विधेयकों और कतिपय वित्तीय विधेयकों को आरंभ करने, उनमें संशोधन करने और उनमें विलंब करने के मामले में राज्य सभा की शक्तियों पर कुछ सीमाएं लगाई गई हैं। राज्य सभा में इन विधेयकों को पुरःस्थापित नहीं किया जा सकता, प्रत्यक्ष रूप से संशोधित नहीं किया जा सकता और उन्हें लौटाने में चौदह दिन से अधिक विलम्ब नहीं किया जा सकता। किंतु ऐसे वित्तीय विधेयकों के मामले में जिनमें धन संबंधी खंड न हों, ऐसी कोई सीमाएं नहीं हैं। धन विधेयकों के संबंध में राज्य सभा की सिफारिशों को मानना

या न मानना लोक सभा का काम है, राज्य सभा उनके संबंध में उस सीमित समय के भीतर जो उसे उपलब्ध होता है, संशोधनों की सिफारिश करके एक उपयोगी भूमिका निभा सकती है। इस संबंध में एक विशिष्ट उदाहरण आय कर (संशोधन) विधेयक, 1961 का है जो एक धन विधेयक था। उसके संबंध में राज्य सभा ने जो संशोधनों संबंधी सिफारिशें की थीं उन्हें लोक सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। किन्तु 1977 और 1978 के वित्त विधेयकों में राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की थी उन्हें लोक सभा द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। संविधान में यह भी उपबंध किया गया है कि संघ के वार्षिक बजट को संसद् के दोनों सदनों में रखा जाना होगा। बजट पर राज्य सभा में भी चर्चा हो सकती है यद्यपि अनुदानों की मांगों सिर्फ लोक सभा में की जा सकती हैं। संघ के लेखाओं के संबंध में भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों को भी दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना होता है। जैसाकि डा० अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था:

ब्रिटेन की संसद् में हाउस ऑफ लार्ड्स, हाउस ऑफ कॉमन्स द्वारा पारित वित्तीय उपबंधों पर केवल सहमति प्रकट करता है; जहां तक वित्त का संबंध है, उसने स्वयं को बिल्कुल समाप्त कर दिया है। हम यहां इस स्थिति में कुछ परिवर्तन कर रहे हैं और निम्न सदन द्वारा आरंभ किए गए कराधान संबंधी और वित्तीय प्रस्तावों को तैयार करने में उच्च सदन को कुछ अपनी बात भी रखने का अवसर दे रहे हैं। हम उसे ऐसा विशेषाधिकार दे रहे हैं जो उच्च सदन को सामान्यतः प्राप्त नहीं होता।⁵⁷

संविधान-निर्माता केन्द्र में अंशतः निर्वाचित और अंशतः नामनिर्देशित द्वितीय सदन के पक्ष में थे क्योंकि उनका विचार था कि ऐसा करना देश की आवश्यकताओं को देखते हुए सर्वाधिक उपयुक्त है। द्वितीय सदन में 250 सदस्यों की कुल संख्या में से नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या 12 तक सीमित कर दी गई है। बाकी सदस्य संघटक इकाइयों के प्रतिनिधि हैं। इस समय इनकी संख्या 233 है। द्वितीय सदन को परिसंघीय स्वरूप देने के लिए संबंधित राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा और संबंधित संघ राज्य-क्षेत्रों के निर्वाचकगण द्वारा इन प्रतिनिधियों के निर्वाचन का उपबंध किया गया है। चूंकि इन निर्वाचक निकायों का गठन वयस्क मताधिकार के आधार पर हुए प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा होता है, अतः राज्य सभा के लोकतांत्रिक स्वरूप को पूरी तरह से बनाए रखा गया है। प्रतिनिधियों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है। निर्वाचन की इस रीति के द्वारा राज्य सभा अपनी संरचना में देश के प्रायः समूचे भिन्न-भिन्न राजनैतिक मतों को व्यापक रूप से प्रतिबिंबित करती है। संविधान ने राज्य सभा में भारतीय संघ की संघटक इकाइयों के हेतु समान प्रतिनिधित्व के लिए उपबंध नहीं किया है। विभिन्न राज्यों और संघ राज्य-क्षेत्रों के बीच स्थानों का आवंटन उनकी जनसंख्या के आधार पर किया गया है और उसके संबंध में संविधान की चौथी अनुसूची में उपबंध किया गया है।

लोक सभा के विपरीत, राज्य सभा भंग नहीं होती किन्तु उसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाते हैं। इससे सदन में निरंतरता बनी रहती है और परिवर्तन भी होता रहता है, सदस्य निवृत्त होते रहते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य आते रहते हैं। जैसाकि तत्कालीन सभापति श्री एम० हिदायतुल्लाह ने कहा था: “कुछ ऐसे प्राणियों की तरह जो अपनी केंचुल उतार देते हैं, राज्य सभा भी अपने एक भाग को केंचुल की तरह उतार देती है।”⁵⁸ इसके फलस्वरूप एक-तिहाई सदस्यों के निवृत्त हो जाने पर राज्य सभा के लिए द्विवार्षिक चुनाव होते हैं। सदस्यों के निवृत्त होने और उनके स्थान पर नए सदस्यों के निर्वाचन के इस चक्र से राज्य/संघ राज्य-क्षेत्र दो वर्षों की आवृत्ति पर राज्य सभा में अपने प्रतिनिधित्व का नवीकरण या प्रतिस्थापन कर पाते हैं और संयोग से इससे राज्य सभा में, जिसे वयोवृद्ध लोगों की सभा कहा जाता है, नए और पुराने का संगम होता है। इस तरह की व्यवस्था पिछले मत के साथ-साथ वर्तमान मत का प्रतिनिधित्व करने के लिए और लोकनीति में निरंतरता बनाए रखने में सहायता देने के लिए की गई है।⁵⁹

राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदन के रूप में राज्य सभा को उस स्थिति में एक विशेष भूमिका प्रदान की गई है जब राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन समझा जाए कि राज्यों के विधायी क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले विषयों के संबंध में केन्द्र द्वारा कानून बनाया जाना चाहिए। अनुच्छेद 249 के द्वारा संसद् को यह शक्ति प्रदान की गई है कि राज्य सभा द्वारा दो-तिहाई बहुमत से संकल्प पारित कर दिए जाने पर वह राज्य सूची में उल्लिखित किसी मामले के संबंध में कानून बना सकती है। राज्य सभा ने 1952 में राज्य सूची में प्रविष्टि 26 और 27 में⁶⁰ और 1986 में प्रविष्टि 1, 2, 4, 64, 65 और 66 में⁶¹ उल्लिखित मामलों के संबंध में ऐसे संकल्प पारित किए। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 312 के अधीन राज्य सभा द्वारा आवश्यक संकल्प पारित कर दिए जाने पर संसद् को विधि द्वारा संघ तथा राज्यों के लिए सम्मिलित रूप से एक या एक से अधिक अखिल भारतीय सेवाएं स्थापित करने की शक्ति है। राज्य सभा ने 1961 और 1965 में भारतीय इंजीनियरी सेवा, भारतीय वन सेवा, भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा, भारतीय कृषि सेवा और भारतीय शैक्षिक सेवा का सृजन करने के लिए ऐसे संकल्प पारित किए थे।⁶² ऐसा समझा जाता है कि राज्य सभा द्वारा दो-तिहाई बहुमत से ऐसे संकल्पों को स्वीकार किया जाना राज्यों के विधायी क्षेत्र में केन्द्रीय हस्तक्षेप के लिए राज्यों द्वारा दी गई सहमति के समान है।

राज्य सभा को एक और शक्ति प्राप्त है जो आपात की उद्घोषणा (अनुच्छेद 352), राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की उद्घोषणा (अनुच्छेद 356) और वित्तीय आपात की उद्घोषणा (अनुच्छेद 360) के संबंध में है। संसद् के दोनों सदनों द्वारा इन उद्घोषणाओं का विहित अवधि के भीतर अनुमोदन किया जाना आवश्यक है। किन्तु यदि ऐसी उद्घोषणा उस समय जारी की जाए जब लोक सभा भंग हो या उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए विहित अवधि के दौरान लोक सभा भंग कर दी गई हो तो राज्य सभा को ऐसा संकल्प पारित करने की शक्ति दी गई है और लोक सभा बाद में उसे अपने पुनर्गठन के बाद पारित कर सकती है। 1977 में तमिलनाडु और नागालैंड में राष्ट्रपति के शासन की अवधि बढ़ाने के लिए⁶³ और पुनः 1991 में हरियाणा में राष्ट्रपति शासन के अनुमोदन के लिए⁶⁴ राज्य सभा को एक संक्षिप्त सत्र के लिए बुलाना पड़ा था। इन दोनों अवसरों पर लोक सभा भंग थी।

जहां तक राज्य सभा के विचार-विमर्श संबंधी कृत्यों का संबंध है, राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में इस प्रयोजन के लिए विभिन्न तरीकों और अवसरों की व्यवस्था की गई है। प्रश्नों और अनुपूरक प्रश्नों, ध्यानाकर्षणों, विशेष उल्लेखों आदि के द्वारा राज्य सभा सरकार के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करती है। प्रस्तावों और संकल्पों के द्वारा और बजट संबंधी चर्चा, अल्पकालिक चर्चा, मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा आदि के द्वारा, जिसमें मतदान नहीं होता, महत्वपूर्ण विचार-विमर्श होता है। जैसाकि ब्राइस सम्मेलन में कहा गया था, इस प्रकार की चर्चाओं का ऐसे सदन में होना अधिक उपयोगी है जहां कार्यपालक सरकार की किस्मत का फैसला ऐसी चर्चाओं पर निर्भर नहीं होता। नियमों में ऐसी अनेक समितियों का उपबंध किया गया है जिनके माध्यम से सदन कार्यपालिका की कार्यवाही की छानबीन करने और लोगों की शिकायतें दूर करने से संबंधित कृत्यों का निर्वहन करता है।

प्रत्येक द्विसदनात्मक विधान-मंडल में प्रत्येक सदन को उस क्षेत्र के भीतर कार्य करना चाहिए जो संविधान के अधीन उसके लिए नियत किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि विधायी तंत्र के सफल रूप से कार्य करने के लिए दोनों सदनों के बीच घनिष्ठतम सहयोग और सद्भावपूर्ण संबंध होने चाहिए। अध्याय 5 में राज्य सभा व लोक सभा के बीच संबंधों के बारे में अधिक विस्तार से चर्चा की जाएगी। यद्यपि प्रारंभ के वर्षों में दोनों सदनों के बीच यदा-कदा टकराव हुए हैं या कटु भावनाएं उत्पन्न हुई हैं तथापि कुल मिलाकर दोनों के बीच परस्पर सहिष्णुता, सद्भाव और सहयोग के संबंध रहे हैं। जैसाकि

श्री जवाहरलाल नेहरू ने प्रारम्भ के वर्षों में टकराव की एक घटना के संदर्भ में कहा था: “दोनों सदन वास्तव में एक ही ढांचे के भाग हैं और यदि सहयोग देने और एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की भावना में कोई कमी होगी तो उससे कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और हमारे संविधान के समुचित कार्यकरण में बाधाएं आएंगी।” भारत के प्रथम प्रधान मंत्री द्वारा, दोनों सदनों के पारस्परिक संबंधों के बारे में की गई इस प्रामाणिक व्याख्या ने दोनों सदनों के आपसी संबंधों के बारे में पथ-प्रदर्शक का काम किया है। संविधान में, प्रत्येक सदन के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों में और दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों और पारस्परिक संवाद से संबंधित नियमों में इन संबंधों को निर्धारित किया गया है। इसके अलावा कई छोटे-बड़े मामलों के बारे में परंपराओं और प्रथाओं का विकास होता रहा है। अतः राज्य सभा और लोक सभा की भूमिकाएं एक-दूसरे की पूरक और अनुपूरक रही हैं।

सामान्यतः द्वितीय सदन की भूमिका को नकारात्मक समझा जाता है अर्थात् यह कहा जाता है कि वह अलोकतांत्रिक, रूढ़िवादी, विलम्बकारी, अवरोधक और गौण होता है। किंतु इसमें से कोई भी बात राज्य सभा पर लागू नहीं होती। यह बताया जा चुका है कि राज्य सभा के लोकतांत्रिक स्वरूप को कैसे सुनिश्चित किया जाता है। जैसाकि पहले कहा गया है, प्रिवी पर्सों को समाप्त करने से संबंधित संविधान संशोधन विधेयक राज्य सभा में गिर गया था। किंतु यहां पर यह भी कहना आवश्यक है कि इससे पहले राज्य सभा ने ही गैर-सरकारी सदस्यों के एक संकल्प को पारित किया था जिसमें ऐसे वैधानिक उपाय की सिफारिश की गई थी। राज्य सभा में सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों के संबंध में अनेक कार्यवाहियों को आरंभ किया गया है और उन्हें देखते हुए यह धारणा असत्य सिद्ध हो जाती है कि द्वितीय सदन हमेशा रूढ़िवादी होता है। जहां तक विधान को पारित करने में विलंब करने वाले सदन के रूप में राज्य सभा की भूमिका का संबंध है, ब्राइस सम्मेलन का यह कथन स्मरणीय है कि द्वितीय सदन का वास्तविक कार्य किसी विधेयक को पारित करके उसे कानून का रूप देने में केवल इतना विलम्ब करना है (और उससे अधिक नहीं) जो उस पर राष्ट्र के मत को पर्याप्त रूप से व्यक्त कराने के लिए आवश्यक हो। वास्तव में ऐसे कई उदाहरण हैं जब राज्य सभा ने परिस्थितियों की आवश्यकताओं को देखते हुए विधेयकों को पारित करने में शीघ्रता की है। उदाहरणार्थ, 25 अगस्त, 1984 को राज्य सभा में एक ही बैठक में, एक के बाद एक, पांच संविधान संशोधन विधेयक पारित किए गए। विधायी कार्यों में राज्य सभा की भागीदारी उत्तरोत्तर बढ़ती रही है और उसमें हुए वाद-विवाद ने सरकार की नीतियों को प्रभावित किया है। इससे यह पर्याप्त रूप से सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि राज्य सभा को द्वितीय सदन कहा जाता है तथापि न तो वह कोई गौण भूमिका निभाती है और न ही वह कोई सजावट की वस्तु है। अतः राज्य सभा सभी दृष्टियों से हमारे संवैधानिक और संसदीय तंत्र के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रियाशील अंग के रूप में सामने आई है। आगे के अध्यायों में कार्यरत राज्य सभा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. स्पीचेज़ एंड डॉक्यूमेंट्स ऑन द इंडियन कॉन्स्टीट्यूशन, लेखक: ग्वायर और अप्पादुरै, वोल्यूम-1, पृष्ठ 32-33
2. भारत शासन अधिनियम, 1935, धारा 18
3. फ्रॉमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन- ए स्टडी, लेखक: बी० शिवा राव, पृष्ठ 418-20
4. -वही- पृष्ठ 422-23; कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-4, 21.7.1947, एपेन्डिक्स-ए, पृष्ठ 716-36
5. कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-4, 28.7.1947, पृष्ठ 873-74
6. -वही- पृष्ठ 875
7. कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-4, 28.7.1947, पृष्ठ 876
8. -वही-

9. कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-4, 28.7.1947, पृष्ठ 872 और 877
10. -वही- पृष्ठ 969-72
11. फ़ोर्मिंग ऑफ़ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन-ए स्टडी, लेखक: बी० शिवा राव, पृष्ठ 424-28
12. -वही- पृष्ठ 428-31
13. कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-7, 3.1.1949, पृष्ठ 1195-96
14. -वही- पृष्ठ 1198
15. -वही- पृष्ठ 1200
16. -वही- पृष्ठ 1214-15
17. -वही- पृष्ठ 1202
18. -वही- वोल्यूम- 8, 18.5.1949, पृष्ठ 82-83; 23.5.1949, पृष्ठ 197
19. -वही- वोल्यूम-7, 3.1.1949, पृष्ठ 1202, 1205
20. -वही- पृष्ठ 1202-03
21. -वही- पृष्ठ 1203-04
22. -वही- पृष्ठ 1204
23. -वही- पृष्ठ 1205
24. -वही- पृष्ठ 1211-12
25. -वही- पृष्ठ 1212-14
26. -वही- पृष्ठ 1215
27. -वही- पृष्ठ 1206-08
28. -वही- पृष्ठ 1208
29. -वही- पृष्ठ 1209
30. -वही- पृष्ठ 1216-18
31. -वही- पृष्ठ 1231
32. -वही- वोल्यूम-8, 18.5.1949, पृष्ठ 89-94
33. -वही- पृष्ठ 95-98
34. -वही- पृष्ठ 105-07
35. -वही- 19.5.1949, पृष्ठ 120-21
36. -वही- 20.5.1949, पृष्ठ 184-85
37. -वही- वोल्यूम-9, 30.7.1949, पृष्ठ 2-3
38. फ़ोर्मिंग ऑफ़ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन-ए स्टडी, लेखक: बी० शिवा राव, पृष्ठ 615-26
39. कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-8, 13.6.1949, पृष्ठ 799-800
40. -वही- पृष्ठ 800-805
41. -वही- पृष्ठ 800-09
42. -वही- वोल्यूम-9, 8.9.1949, पृष्ठ 1116-19
43. लोक सभा वाद-विवाद, 14.5.1954, कालम 7388-89, राज्य सभा वाद-विवाद, 23.8.1954, कालम 36-37, संविधान और संसदीय अधिनियमों के हिन्दी पाठ में काउंसिल ऑफ़ स्टेट्स और हाउस ऑफ़ द पीपल के लिए क्रमशः राज्य सभा

और लोक सभा नामों का प्रयोग हुआ है। किंतु इनके अंग्रेजी पाठ में काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल नामों का प्रयोग जारी है। तथापि, दिल्ली (निर्माण कार्यों का नियंत्रण) अधिनियम, 1955 (अब निरसित) और सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के अंग्रेजी पाठ में राज्य सभा और लोक सभा नामों का प्रयोग किया गया था

44. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1971, कालम 77-79
45. लोक सभा वाद-विवाद, 18.3.1954, कालम 2640-52 और 2.4.1954, कालम 3974-4025
46. -वही- 30.3.1973, कालम 291-327 और 27.4.1973, कालम 352-76
47. ए० आई० आर० 1973, एस्० सी० 1461
48. गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति का 14वां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा), जो 19.2.1981 को प्रस्तुत किया गया
49. -वही-
50. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 20.2.1981
51. गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा), जो 25.2.1981 को प्रस्तुत किया गया
52. गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति का 19वां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा), जो 25.3.1981 को प्रस्तुत किया गया
53. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 43
54. संसदीय समाचार (1), 22.2.1999
55. लोक सभा वाद-विवाद, 25.2.1999, कालम 383-476 और 26.2.1999, कालम 457-65 और कालम 469-626
56. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.3.1999, कालम 218-20
57. कॉन्स्टीट्यूट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-8, 20.5.1949, पृष्ठ 185
58. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.3.1984, कालम 193
59. फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन-ए स्टडी, लेखक: बी० शिवा राव, वोल्यूम-2, पृष्ठ 442
60. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.7.1952, कालम 1481-92; 22.7.1952, कालम 1628-86
61. -वही- 12.8.1986, कालम 395 और आगे के कालम; 13.8.1986, कालम 183-227
62. -वही- 6.12.1961, कालम 1280-1305; 30.3.1965, कालम 5010-91
63. -वही- 1.3.1977, कालम 41-154
64. -वही- 3.6.1991, कालम 1-24 और 4.6.1991, कालम 164-77